सन्दर्भों से कटे हुए

[Sandarbhon Se Kate Hue]

राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत

डा. सावित्री डागा

संगम प्रकाशन
खापटा, मोती चौक
जोधपुर.

प्रथम संस्करण—स्वाधीनता दिवस १९७७
मूल्य : ११.००

हिन्दुस्तान प्रिन्टर्स
जोधपुर.

Sandarbhon Se Kate Hue (Poetry)
Awarded by Raj. Sahitya Academy
Dr. Savitri Daga

मेरे विद्रोही कविमित्र (पति) डा० एम. एल. डागा को

एवं

उन सबको

जो अपने विचारों-विश्वासों के लिए क़ीमत चुकाते रहे हैं

प्रस्तुति

समझ में नहीं आता कि अपनी इस कृति को आपके हाथों में देते हुए, इसके विषय में क्या कहूँ और क्या नहीं कहूँ ! 'अपनी बात' लिखने की जो परम्परा है, वह अपनी बात तो मैंने इसकी रचनाओं में ही काफ़ी कह दी है और अपनी बात ही नहीं; अपनों की बात या मेरी, तुम्हारी व सबकी बात भी समय-समय पर अलग-अलग ढंग से कहने का प्रयास किया है; यह बात स्वयं इसकी कविताएँ ही बता सकेंगी।

इस पुस्तक की प्रायः सभी कविताएँ समय-समय पर स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित हो चुकी हैं।

इस कृति का अकादमी से पुरस्कृत होना मेरी दृष्टि में, सृजन-यात्रा के बीच की एक छोटी-सी घटना मात्र हो सकता है, मील का पत्थर नहीं !

इन कविताओं पर आज भी जब एक नजर जाती है तो अनायास ही मेरे स्मृति-पटल पर उभर आते हैं, वे स्थितियाँ-परिस्थितियाँ, वे जाने-अनजाने चेहरे, वे आँखें, वे घटनाएँ और वे कशमकश के क्षण जो इनके सृजन की मूल प्रेरणा रहे हैं; जिनके प्रति मेरा हृदय सदैव कृतज्ञता-नत रहेगा।

सावित्री डागा

प्राध्यापिका, हिन्दी-विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय,
जोधपुर.

११८, नेहरू पार्क,
जोधपुर।

क्रम

अजनबी मैं

अजनबियों की भीड़-सी यह जिन्दगी
आदमी की तरह जीने का अहसास नहीं करने देती
आँखें, आँखों को देखती तो हैं
पर छूती नहीं
हाथ, हाथों को छूते तो हैं
पर सम्बल नहीं देते
न जाने कितनी बार एक दिन में, मैं
मुस्कान की लिपिस्टिक अधरों पर लगाती हूँ
और वह बार-बार धुल जाती है
न जाने कितनी बार
इन बुझती आँखों में, मैं
खुशी की चमक का काजल आँजती हूँ
पर वह बार-बार वह जाता है
इस तरह मैं
जिंदगी के नाटक का स्वांग करते-करते
स्वयं के लिए भी अजनबी बन चुकी हूँ !

मन

परीक्षाकक्ष-सा खामोश मेरा मन
कि जिसमें
कसमसाहट है
व्यथा है
भार है
चिंतन है
उलझन है
मगर वस ध्वनि नहीं है !



याद

याद
पाँव के तलुवे में
चुभे एक शूल-सी
गहरे में चुभ कर
जो भीतर ही टूट गई;
जिसको निकाले कोई
तब भी हो दर्द वही
और न निकलने पर
पीड़ा न जाय सही
देखो तो ऊपर से
साफ़ वह दिखती नहीं !



अहम्

अहम्
पिंजरे में बन्द
शेर-सा गरजता है
तोड़ कर
सींकचे मजबूरियों के
बाहर आने को
बार-बार तड़पता है !



अकेलापन

यह अकेलापन
कि जैसे शिशिर में
डाल पर कोई अकेला पात रह जाये
कि जैसे खण्डहरों में
अश्रु से भीगी हुई आवाज़ टकराये
यह अकेलापन
कि जैसे डाल से टूटा हुआ पत्ता
किसी अज्ञात दिशि के शून्य में
उड़ता चला जाये
यह अकेलापन
कि मरघट में किसी की क़ब्र पर कोई दीप धर जाये
और वह तिलतिल जले
बुझने नहीं पाये
यह अकेलापन
नदी की राह मुड़ने पर किसी सूखे हुए सूने किनारे-सा

शोर में भी एक चुप्पी के इशारे-सा
यह अकेलापन
कि जैसे शून्य में ही शून्य की झंकार टकराये
मृत्यु को जैसे कोई आकार मिल जाये !



संदर्भों से कटे हुए हम

संदर्भों से कटे हुए हम
जैसे कोई
पतंग की डोर
ऊपर चढ़ जाने पर हाथ से ही छूट जाए
जैसे कोई
नई-नई टहनी
किसी पौधे की टूट जाए
जैसे कोई
आँसू की बूंद
दृग-पलकों से छूट जाए
कारण बताए बिना
मीत कोई रूठ जाए
जैसे कोई
कविता की पंक्ति अधूरी ही छूट जाए
कहानी का क्रम
जैसे बीच में ही टूट जाए !

*

इसी से अंधेरा है

फ्यूज हुए बल्ब-सी
यह जिन्दगी
ऊपर से सुन्दर है, साबत है
भीतर से टूट गया
तार कुछ ऐसा इक
रोशनी नहीं होती
इसी से अंधेरा है !



ज़िन्दगी की तलाश

लाश पर बिछाए हुए सुमनों की सुषमा-सुगन्ध-सी
अधरों की मुस्कानें
क़ब्र पर जलाए हुए दीपक की आभा-सी
मुखड़े की चमक-दमक बेमाने
रेती की धारा-सा सुन्दर सुनहला
यह जीवन का नीरस क्रम
ज़िन्दगी सिर्फ़
जैसे मर कर भी जीने का गहरा भ्रम
या जैसे श्वासों का सूना क्रम
अन्तहीन बियाबान राहों-सी ज़िन्दगी
न चलने देती है
न रुकने देती है !
शीष कटे प्रेत-सा भटकता है
कुचला हुआ स्वाभिमान !
किन्हीं खोटे सिक्कों-सी लौट-लौट आती हैं
अर्थहीन स्मृतियाँ बार-बार

और जिस अभाव को
राम की तरह् वनवास दे डाला था
(प्राण अपने खोकर भी)
वही क्यों भटकता है
उर-घर के द्वार-द्वार !
अशोकवन में वन्दिनी सीता-सी आस्था पर
त्रिजटा-सी अनास्था नित पहरा देती है
कैकयी-सी मोहग्रस्त बुद्धि यह
भरोसा भी जब करना चाहती
स्नेह, सद्भाव का
मंथरा-सी शंका उसे फिर बहका देती है;
फिर भी
जीवन के खण्डहरों के कुछ अंधेरे कोनों में
आज भी घर बनाए लटक रहीं
आशा-चमगादड़ें
गूँगी हुई चाहों-सी गूँज-गूँज जाती हैं
प्रतिध्वनियाँ अपने ही श्वासों की
खण्डित विश्वासों की !

नया वर्ष

लम्बी रेल-यात्रा के
घुले-मिले एक भले साथी-सा
एक वर्ष साथ छोड़ चला गया
एक पलक झपकते ही वह स्थान
एक नए यात्री से भर गया
कैलेण्डर और डायरी के पृष्ठों पर
पुराना सन् छिप गया
नया सन् उभर गया !



खुशी का एक दिन

श्वेत कबूतर-सा पंख फड़फड़ा कर
फुर्र से उड़ गया
खुशी का एक दिन !
रात श्यामल कोकिल-सी
कुहु-कुहु का मधुर आलाप छेड़
एक पलक झपकते ही ना जाने कहाँ छिप गई !
गूंजती रह गई कुछ मधुर प्रतिध्वनियाँ
उभरता रहा अन्तर में
एक उजला-सा सुखद बिम्ब
और फेनिल ज्वार
सुधियों की फाइल में एक पृष्ठ और
आलपिन से जुड़ गया !



वर्षा की साँझ

आवारा लड़कों-से
भटकते हैं छोटे-छोटे बादल आकाश में
क्रुद्ध छात्रों-से गड़गड़ाकर
मानों नारे लगाते हैं, विद्रोह जगाते हैं
बूंदें जो गिरती हैं अम्बर से
शायद पुलिस ने अश्रु-गैस छोड़ी है
बिजली क्या कड़की है, मेघों की भीड़ चीर
मानों गोलियाँ चलाती दौड़ी
पुलिस-वेन कोई है ।



सवेरा

सवेरा हो गया ऐसे
जैसे किसी को मिल गई छुट्टी सजा के बाद
शरारती बच्चों-से
चिमर-टिमर करते ये तारे
खड़े किए गए थे
जो नभ की पाठशाला में
मंदिर के घंटों की ध्वनि सुन भाग गए है
अध्यापक-सा थका हुआ चाँद
श्वेत चादर तान
जैसे सो गया विश्राम लेने
या कि जैसे
मौन की खामोश दृढ चट्टान से
जिन्दगी का चपल झरना फूट निकला हो
या कि जैसे
कारखाने के श्रमिक ने
श्याम वस्त्र उतार, करके स्नान

श्वेत वस्त्र धारण किये हों
या कि जैसे
मानिनी का मौन
मुखरित हो गया हो
या कि जैसे
रूठकर अति दूर जाता मीत
मन कर थम गया हो
या कि जैसे
झुलसते आतप में
कोई फूल हँसकर, खिल गया हो
या कि भटके पथिक को
गंतव्य अपना मिल गया हो !



रास्ते

लगता है, दुनिया के ये रास्ते
ग़लत दिशा जाते हैं
या हमारे पाँव ही कुछ ग़लत मुड़ जाते है
कुछ भी नहीं मालूम
बस इतना मालूम है
कमजोर रास्ते खोजते हैं
समर्थ नए बना जाते हैं
और जिधर वे बढ़ते हैं
रास्ते तो उनके पाँवों के साथ ही–
मुड़ जाते हैं !



चौराहे

भटक रही बहुत बड़ी भीड़
अंधेरे चौराहों पर
दिशाहीन, गंतव्यहीन
दिशा है जिनकी दृष्टि में
वहाँ पथ नहीं
जहाँ दिशा है, पथ भी है; वहाँ गति नहीं
जीवन में कहीं भी संगति नहीं :
सही दिशा, सही रास्ता, और अथक गति
तीनों हों जिसके पास
ऐसा कोई व्यक्ति नहीं !



पगडंडी

अतुकान्त कविता-सी
जीवन की पगडंडी
ना जाने कब
इतनी संकरी हो जाती
कि दोनों पाँव बंध कर रह जाते हैं
गति ही रुक जाती है
और कहीं-कहीं इतनी चौड़ी हो जाती है
मैदान-सी फैल जाती है
कि अपने ही क़दम
जैसे चलने का क्रम ही भूल जाते हैं
अपनी ही प्रगति का अहसास नहीं हो पाता
कहीं तो विराम चिन्हों में ही खो जाते हैं
और स्वयं ही स्वयं के लिए
एक प्रश्नवाचक चिन्ह बन जाते हैं
टेढ़ी-मेढ़ी संकरी चौड़ी
अनबूझ पहेली-सी
जीवन की पगडंडी !

प्रश्न आदमीयत का

धरती के नक्शे पर
स्वाभिमान के एक नए अंकुर ने सिर उठाया है
जिसका नाम है 'बांगला देश' !
अपनी अच्छाइयों के लिए, अपनी सच्चाइयों के लिए
संघर्ष करना, यंत्रणा सहना, बहुत कठिन होता है !
पर सच्चाई पिट कर भी,
मिट कर भी परास्त नहीं होती है
निर्दोषता की सज़ा बहुत दर्दनाक होती है
रात के अंधेरे से दिन का अंधेरा कहीं अधिक
काला होता है
मौत की सज़ा से जिन्दा रहने की सज़ा
कहीं अधिक लम्बी व अधिक संगीन होती है
बारूदी आग की लपटों से अहम् की रोशनी
अधिक रंगीन होती है
उसी से राख के ढेर में छिपी चिनगारी-सी आदमीयत
मुस्कराती है

ज़िन्दगी ज़िन्दा रहती है, सिर उठाती है !
कौन छीन सकता है, सूरज से रोशनी को,
सागर से पानी को ?
कौन बांध सकता है, धरती की गति को,
झंझा तूफ़ानी को ?
आदमी, आदमी है वह मजहब नहीं बन सकता
कौन रख सकता मजहब बना आदमी को ?
आदमी के अन्तर की आग जब सुलगती है
खुद जल कर भी जला जाता है वह अन्याय-अनाचार को
मज़हबी अम्बार को !
पर प्रश्न यह बांगला, वियतनाम या क्यूबा का ही नहीं है
प्रश्न है, आदमी का और आदमीयत का ?
इस धरती पर ज़िन्दा आदमी का मांस खाने वाले
कुत्तों की संख्या
बढ़ती ही चली जा रही है,
यदि कोई आदमी है तो उसके लिए जरूरी है
इन कुत्तों को दुत्कारे, सिर उठाए तो मारे
अन्यथा एक दिन ऐसा भी आएगा
जब इन आदमीनुमा आदमखोर कुत्तों का वंश ही

धरती पै पसर जाएगा !
इसलिए जरूरी है
यदि हम आदमी है तो आदमी का हाथ थामें
आदमी के साथ चलें आदमी के साथ जलें
आदमी के साथ जिएँ आदमी के साथ मिटें !
बेगुनाह लाशों के पवित्र ढेर, दुधमुंही चीखें
सारा बंगाल, मुजीब, रोशन
प्राणों का प्यार तोड़ सिर उठा बन्दूक ले
बढ़ चलने वाला बांगला का एक-एक नौजवान
आज दुनिया के सामने
आग की लपटों से अंकित प्रश्न-चिन्ह् बन गए हैं !
चीखते हैं—
उत्तर दो ! उत्तर दो !!
कब तक ? कब तक ?
आदमी आदमी को गुलाम रख पाएगा ?
कब तक आदमी मजहब रह पाएगा ?
कब तक आदमी, स्वाभिमान की रोटी, स्नेह के पानी
स्वाधीनता की हवा बिना जीवित रह पाएगा ?

★

वियतनाम

वक़्त की पाटी पर
रक्त से लिखा हुआ
उभर-उभर जाता है
सिर्फ़ एक नाम
वीर वियतनाम, वीर वियतनाम
गूँज-गूँज जाता है बार-बार सुबह शाम
हवा की तरंगों में
मंदिरों की आरती-सा
मस्जिद की अजान-सा
सिर्फ़ एक नाम
धीर वियतनाम, धीर वियतनाम !



अब मैं कैसे मान लूँ ?

रातें जब गर्म कोलतार की तरह
मेरे सपनों से चिपक जाती हैं
और दिन
चूने के घोल की तरह
मेरी श्वासों पै छितर जाते हैं
पेट की तपिश से
वासन्ती बयारें जब अश्रुगैस में बदल जाती हैं
अब
मैं यह कैसे मान लूँ
कि यह वही जिन्दगी है
जिसके लिए मनुष्य मृत्यु से जूझता रहा है !
स्नेह के विश्वास
आहत हो कर
अब नक्सलवादी बन गए हैं
और सिद्धान्त बन गए हैं खोटे सिक्के
जिनसे रात के अंधेरे में

जीवन का हर ऐशोआराम खरीदा जा सकता है
दुनिया एक मकड़ी का जाला बन गई है
अब
मैं यह कैसे मान लूँ
कि आदमी, आदमी की तरह जीने को स्वाधीन है !



अकाल ईमान का

ग्रनन्तकालीन स्नेह-वंचिता नारी-सी
यह सूखी धरती
करुणा-सी पसरी है
माता की ग्रसीम ममता से भरा उसका वक्षस्थल
जड़ बन गया है समय की निर्मम ग्राघातों से
फट कर टुकड़े-टुकड़े हो गया है उसका स्वर्ग जैसा ग्रन्तस्तन
पत्थरों के ग्रांसू रो रही है वह
ग्रौर तुम जश्न मना रहे हो,
उसके फटे-फटे ज़ख्मी सीने पर
मानवता की मज़ार-से ये बंगले बनवा रहे हो !
ड्रेसिंग रूम के ग्रादमक़द शीशे में शक्ल निहारने वालों,
मरुस्थल के चिटके हुए ग्राईने में
एक बार देखो ना ग्रपनी शक्ल की परछाईं
जो उसके दिल की दरारों में डूब जाएगी
या हज़ार-हज़ार खण्डों में प्रतिबिम्बित होती तुम्हारी वह
सच्ची बदरूप परछाईं

तुम्हारे अन्तर को भी डरा जाएगी ।
हड्डियों के ढेर-से, मौत की प्रतीक्षा में जीते हुए
इन अधमरे पशुओं की पुकार क्या तुम्हें सुनाई नहीं देती ?
मौत की परछाइयों से घूमते ये डरावने कंकाल
कांटों जैसी घास और छिलकों से पेट भरने वाले-
ये मानव-पुत्र
और वे कांटे चीर देते हैं, मेरी भी आंतों को
क्या तुम्हारे मखमली पर्दों में कहीं खरोंच नहीं आती ?
इधर, मानव द्वारा मानव की धीमी आत्महत्या के-
षड्यंत्र-से
ये छुट-पुट अन्तहीन, निरर्थक अकाल-राहत कार्य
जो लाखों को भुलावा देने के साथ
चुनौती दे रहे हैं, तुम्हारी शेष सभ्यता को ।

× × ×

दूसरी ओर नलों पर लगी प्यासी घड़ों की कतारें
और ये कुलबुलाते रीते बर्तन
सवेरे ही सवेरे दिन को शापित कर जाते हैं,
जिनका दिन, प्यास से, भूख से, क्रोध व घृणा की आग से-
शुरु होता है

उनके शाम के अंधेरे की बात ही कौन कहे;
आग से शुरु होता सवेरा
और निराशा व उच्छवासों के धुएँ में डूबती हर शाम
तुम्हारी सभ्यता के आगे प्रश्नचिन्ह लगा जाती है।
छब्बीस वर्षों की आजादी की गरिमा को-
बेचने वाली ये राशन की दूकाने
सुबह से शाम तक
सड़े अन्न के दानों के लिए
तरसती मनुष्यों की यह भीड़
हमारे भ्रष्ट राष्ट्रवाद का विज्ञापन कर रही है
और तुम, अपनी डाईनिंग टेबल पर
बढ़िया पकवानों के साथ. ठंडे बीयर की जो चुस्कियाँ ले रहे हो
वे तुम्हारे पौरुष के ठंडे हो जाने की प्रमाण हैं।

× × ×

पानी अब केवल बेबस गरीबों की आँखों में रह गया है
और अनाज रह गया है, सेठों के गोदामों में
अकाल धान का ही नहीं, ज्ञान का भी है
और ज्ञान से कही अधिक ईमान का है
जब सोया ईमान फिर लौट आएगा
अन्न का अकाल तो खुद ही मिट जाएगा !

खोई हुई जिन्दगी

हर क़दम पर
मेरे पाँव जिन्दगी की लाश से टकरा जाते है
उठते हैं, बढ़ते हैं
फिर फिर टकरा जाते हैं
और जहाँ के तहाँ
बार-बार लौट आते है !
भीड़ भरे चौराहों-सी जिन्दगी
न चैन लेती है न लेने ही देती है !
विज्ञापन की बत्तियों-सी आँखों की यह भीड़
मेरी आँखों में चकाचौंध भर जाती है
कोई आँख अब किसी आँख की बात नहीं पढ़ती
सवारियों के पहियों की आवाजों-से
बड़बड़ाते रहते है ये लोग
केवल शब्द, केवल वाक्य, केवल ध्वनियाँ उचारते हैं
आदमी अब आदमी से बात कहाँ करता है !
सभी सिर्फ़ नीरवता नकारते हैं !

कई बार

कई बार
जिन्दगी और मौत की सीमाएँ इस प्रकार मिल जाती हैं
कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता
कई बार हम, जिन्दा रह कर
फ़कत मौत ही जीते हैं
कई बार मौत की गोदी में भी
जिन्दगी का अमृत पी लेते हैं
आज जिन्दगी एक दागी हुई गोली की तरह
छूट गई है हमारे हाथ से
खो गई है अविश्वास, अनास्था के अपार अजाने वियावान में
लाख खोजने पर भी
वह हाथ नहीं आएगी
अभी तक तो अंधेरा और भी गहरा रहा है
जिन्दगी के नाम पर
घड़ी के पेण्डूलम की तरह
चलती रहेंगी ये निर्जीव निःश्वासें

घड़ी की टिक-टिक-सी गूंगी धड़कनें
जो अपनी बात कभी नहीं कह पाएंगी
न कभी अर्थ समझ पाएंगी
प्रेम, विश्वास और इन्सानियत का
दुनियां को, सिर्फ़ एक प्राणी की तरह
मात्र जीने का अहसास करा पाएंगी।
कई बार दुनियां के लिए ही नहीं
स्वयं के लिए भी निरर्थक बन जाते हैं हम
बेगुनाही में भी सिद्ध कर देते हैं
स्वयं को गुनाहगार
कई बार दुनियां को सुधारने के लिए
खुद को बिगाड़ देते हैं हम
आदमी की तरह यह पानी भी है
कितना लाचार
जो मिट्टी के साथ मिलकर यों तो सोना उपजाता है
पर कहने को तो वह कीचड़ कहलाता है।
कई बार एक क्षण में ही युगों को जिया जाता है
एक श्वास में ही
सुख-दुःख का सारा समुन्दर पिया जाता है!

प्यास, प्यास और प्यास

प्यास, प्यास और प्यास
दूर दूर तक फैले हुए मरुस्थलों का विकास
ऊँचे उग आते हैं दर्द के खजूर, काँटों के झाड़
नित बढ़ती बाधाएँ, ज्यों रेती के पहाड़
अविश्वास, धोखा ये प्राण–लेवा छल
ज्यों दम घोटू अंधड़ों से भरा मरुस्थल
अपने अस्तित्व का कुछ ऐसा डर
घेर ले जैसे कोई बालू का बवंडर
ये प्यासे सपने, ज्यों दूर नख्लिस्तान
भागता है मन का मृग
पार करता क्षितिजों तक फैला बियावान
आशा-सी मृगतृष्णा फिर-फिर भटकाती है
फिर-फिर दौड़ाती है
एक बूँद पानी, बस एक बूँद पानी, बस एक बूँद पानी
—के वास्ते, भागती यह जिन्दगी
प्यासी की प्यासी ही दम तोड़ जाती है !

यही तो सभ्यता है

हर मानव के भीतर
एक महाभारत चलता है
अर्जुन-सा मानव-मन
बुद्धि के कृष्ण से प्रबोधा नित जाता है,
फिर वही स्वार्थों व स्वत्वों का भीषण संग्राम
निर्दोष इच्छाओं की हत्याएँ
भोले विश्वासों का क्रूर रक्तपात;
अभिमन्यु-सा ईमान
विषमताओं के चक्रव्यूह में नित अकेला फंस जाता है
स्नेह का युधिष्टर
नित सिर धुन रह जाता है
क्रन्दन भी सुनता है कौन
सुन कर भी रहते सब मौन
यही तो सभ्यता है !

*

अभी तलक तो

मेरे आँसू !
मेरे दुःख पर बरस न पड़ना
अभी तलक तो
धरती का कण-कण प्यासा है !
जाने कितनी आग छिपाये
अपने उर में
पृथ्वी चलती
जाने कितनी अस्तव्यस्तता लिये ज़िन्दगी की
निशि-दिन यह हवा मचलती
जाने कितना मिटने का अवसाद छिपाये
सरिता बहती
और न जाने कितनी आहें
जो छिप जातीं महाशून्य में
अपनी करुण कथाएँ कहतीं
मेरे अन्तर ! अपने दुःख से तड़प न जाना
अभी तलक तो तड़प रहीं कितनी आशाएँ !
जाने कितनी कटुता पीकर इस जीवन की
नीम फूलता
जीवन के खट्टेपन को मीठाकर

यह ग्राम झूलता
मिलन-विरह के कोटि-कोटि इतिहास समेटे
युग-युग से पगडंडी भी कितनी चुप रहती
ऐ मेरे मन !
अपने ग़म के बोझे से तुम टूट न जाना
अभी तलक तो
तुझे बदलनी है जीवन की परिभाषाएँ !
जाने कितना अन्तर में सूनापन पाले
नभ अपने दुःख को नीली चादर से ढकता
जाने कितनी तड़प छिपाए
विद्युत हँसती
जाने कितनी घुटन लिये
हर बदली घिरती
ऐ मेरे उर !
इतना-सा जल चीख न पड़ना
अभी तलक तो
जाने कितनी मूक व्यथाओं को
देनी तुमको भाषा है !

मानव का मन

मानव का मन
एक गुलाब के पौधे-सा
जिसमें सुख-दुःख-सी कोमलता-कर्कशता
साथ-साथ रहती हैं
जिसमें कोमलता कभी फूल बनके खिलती है
भरी हुई रहती है स्नेह की सुवास भी ।
हरी-हरी कटावदार पत्तियाँ
व्यापक विश्वास-सी, क्षमता-सी, शुचिता-सी
ढाँक-ढाँक देती हैं कटुता के शूलों को
ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, द्वेष के जो कांटे हैं
कभी-कभी पत्तियों को छेद भी तो देते हैं
फिर भी मुस्काती है चुभते-से शूलों में
क्षण भंगुर जीवन-सम बिखरते-से फूलों में
आशा-सी पिपासा-सी
कोमल-सी नव कलिका ।

सुख-दुःख

जीवन की सुख-सुविधा
जीवन की कोमलता
हरी-हरी पत्तियों से लदे हुए गमले में
लम्बे समय बाद, खिले एक फूल-सी
कितनी प्रतीक्षा के बाद एक फूल खिला
किन्तु, मुरझा गया चन्द क्षण बाद ही
फिर वही कांटों भरी टहनियाँ, फिर वे ही पत्तियाँ
दुःख-सी लगी रहीं;
शेप रही सुख के उस सुमन को सुवास-सी
बस केवल याद ही !
मानव का सुख
जैसे, रातके सपने-सा
दो क्षण को बहला कर अधूरा टूट गया
या, राह में जो मीत मिला राह में ही छूट गया
याद केवल शेप रही
उसने ही बाँह गही
कभी-कभी जीवन में डूबते मानस की ।

मजबूरी है

कैसी दुर्बलता है
अपने ही मन की यह
फूलों को भूल गया
जिनने था सहलाया
शूल चुभा एक,
मगर याद रही उसकी ही
पाँव वही बार-बार हाथों ने सहलाया ।
मन की दुर्बलता है
सत्य सभी भूल गये
जिनके थे साथ पले
जिनके थे साथ जिये
स्वप्न रहा याद वही
जो पल में टूट गया ।
मन की मजबूरी है
साथ रहे लाखों के
साथ बहे लाखों के

कामों का कोलाहल
किसको कब याद करे ?
याद रहा मीत वही
जो नित को छूट गया !
मन की लाचारी है,
कितने ही मुस्काते मुखड़ों के साथ हँसे
लेकिन कब सहलाया
मन को मुस्कानों ने
याद रहे साथी वे
जिनके सँग रोये थे
मधुर वही आँसू था
जो दृग से छूट गया !
मन की मजबूरी है
किसको मजबूर करें
जीवन की हलचल में
खुद को सब भूल गये
याद हुई 'स्व' की तब
स्वार्थ जब टूट गया !

झंझा

किसी ऊधमी बालक-सा
बार-बार मचलती है
ऊधम मचाती है
हाथ-पाँव मारती
एक नहीं सुनती, न सुनने ही देती है
सब को झकझोरती
हाथ नहीं आती है
या किसी शराबी-सी
उन्मत्त प्रलापी-सी
लड़खड़ाते पाँवों से भगदड़ मचाती है
चीखती, चिल्लाती
हू-हू करके शोर खूब ही मचाती है
या किसी प्रपात के
उन्मत्त प्रवाह-सी
काली सड़क पर नदी स्वर्ण की बहाती है !

अभिमन्यु मन

मेरा अभिमन्यु मन
बार-बार चक्रव्यूह में विषमताओं के
खुद ही घुस जाता है
झेलता लाखों प्रहार अकेला ही
लौट कहाँ पाता है !
और इस अभिमन्यु मन की मौत भी कई बार हो चुकी है
मर-मर कर किंतु यह फिर-फिर जी जाता है।
बेधता है फिर से कोई चक्रव्यूह
फिर खुद बिंध जाता है
ऐसे ही चल रहा महाभारत
लेकिन
जय औ' पराजय का उत्तर भी निरुत्तर है
खोजने जाता जो उत्तर
स्वयं खो जाता है !

*

प्रेम : मानवता

प्रेम मेरे जीवन से ऐसे लिपट गया है
जैसे कोई नन्हा शिशु मां के गले में
नन्हे-नन्हे हाथ डाल
वक्ष से चिपट जाय;
कार्यों के कोलाहल व स्वार्थों की सिर पड़ाऊ भीड़ में
आँचल थाम कर
अस्फुट मौन शब्दों में कहता जाय
"मुझे मत छोड़ो
अपने ममत्व भरे वक्ष से विलगाओ मत
मैं दूसरा कोई नहीं;
तुम्हारा ही आत्मज हूँ
मेरे सान्निध्य में तुम्हारी सार्थकता है
मेरे साथ जिन्दगी की इस कशमकश में भी
तुम्हारी सक्षमता है
मुझे मत छोड़ो ।"
और तब मैं

गुब्बारे-सी खोखली जिन्दगी
और वर्षा-जल से भरे जलाशय जैसा मन लिये
उसे अपने में समेट लेती हूँ
या स्वयं को ही उसी के हवाले कर देती हूँ
कल्पों जैसे दीर्घ दुःखों व अभावों से
घुटन और कुंठाओं से मुक्त होकर
एक सुखद क्षण की बूंद में
खुद को डुबा देती हूँ
तब मुझे लगता है
बूंद बन कर ढुलक जाना ही जीवन की सार्थकता है
सबसे बड़ी क्षमता है
'स्व' का पर में विसर्जन ही
मानवता है !



मन ही क्या ?

एक सुखद क्षण को पा जाने को
उसके संग, कितने ही
दुःखों को निमन्त्रण दे डाला है
एक स्नेह ज़िंदा बस रह जाये
उसके हित
कितनी पीड़ाओं को अन्तर में पाला है ।
एक जीत मिल जाये
एक खुशी खिल जाये
इसके हित
कितने संघर्षों से युद्ध किया
हँस-हँस कर सह ली हैं कितनी ही ज्वालाएँ !
फिर भी कब हारा है, हारों से मानव-मन
बाधाएँ देख कहाँ रुकती हैं आशाएँ !
कलियाँ कब खिलने से रुकती हैं
शूल देख
बूंदियाँ कब ढलने से रुकती हैं

धूल देख (तपी हुई)
अरुणा कब रुकती है
रात की तमिस्रा से
चीर घने तम को भी किरणें मुस्काती हैं
स्रोत-धार कब रुकती है
कठिन प्रस्तरों को देख
चोटें खा-खा कर भी बहती वह जाती है
कौन यहां बांट सका नभ को सीमाओं में ।
नियमों से बंध जाये
दुखड़ों से भय खाकर रुक जाये
तो फिर वह
मन ही क्या मानव का !



अब तो राम जला करता है

आज राम की नहीं
जीत होती रावण की
आज न जलता रावण
राम जला करता है
अपने ही उदात्त गुणों की ज्वालाओं में
अपनी मर्यादा की सीमाओं में
कैद हुआ तड़पा करता है
अब तो राम जला करता है !
गांधी ने तो राम-राज्य का सपना देखा
जग के हर मानव को उर में अपना लेखा
किन्तु हुआ क्या
रावण का यह रा य हो गया
गली-गली में हर कूचे में
बना-बना कर वेष अनेकों
सभी दफ्तरों और संसद में
सत्य-अहिंसा की सीता को

प्रतिपल प्रलोभनों का रावण
पग-पग आज छला करता है ।
अब रावण तो नही मगर कहने सुनने को
रावण का बस पुतला आज जला करता है
न्याय-विभीषण की वाणी पर शत पहरे हैं ।
रावण की सत्ता-वैभव की महा सैन्य से
छल प्रपंच शोषण हिंसा के तीर बरसते
गांधीवादी राम नहीं अब टिक पायेगा
वह अपनी दुर्बलताओं से स्वयं चुक गया
हमें आज तो शक्ति का साकार चाहिये
विष पीने को विष का पारावार चाहिये
अनल बुझाने, आज अनल का ज्वार चाहिये
देव नहीं, बस मानव का अवतार चाहिये ।
यों तो सच है, युगों-युगों से
राम और रावण का युद्ध चला करता है !
अब तो राम जला करता है !

आदमी का अवमूल्यन

अब तलक तो 'प्रेम की गलियाँ ही होतीं सांकरी' थीं
किंतु, अब तो ज़िन्दगी के रास्ते तंग हो चुके हैं
पाँव रखने को नहीं स्थान
फिर भी
हर रोज कुछ 'नए पाँव'
उस तंग रास्ते पर और निकल आते हैं !
नौकरी, व्यापार, चाहे राजनीति
भीड़ हर पथ में वहुत है
और वढ़ती जा रही है
ज्यों किसी कन्जूस की धन-प्यास
या कि वर्षा में पनपती चरागाही घास !
और वढ़ती जा रही ज्यों भीड़
मनुज-उर के द्वार छोटे हो रहे हैं !
इस उमड़ती भीड़ में लाचार
कुचला जा रहा व्यक्तित्व का यह अर्द्धविकसित फूल ;
या किसी सरिता का जीवन-सम सुशीतल नीर

बढ़ने पर उमड़ कर प्रलय बनता, तोड़ देता कूल !
फिर भी आदमी नादान
बनता जा रहा अनजान
छूते हाथ हाथों को मगर सम्बल नहीं देते
साथ में चल रहे साथी नहीं,
बस भीड़ पाँवों की
कुचलने को जो आमादा किसी कमजोर का अस्तित्व !
नही है वक़्त, देखे और पहचानें मनुज की शक्ल
राह अपनी देखनी है क्यों कि वह संकरी बहुत है
औ' कुचलने का अंदेशा भी बहुत है !
यहाँ अब आदमी के संग
धरा पर उग रही फसलें
अभावों की बुभुक्षा की
जो कहती हैं
संख्या की उफनती इस सरिता पर बाँध की जरूरत है
नहीं तो आदमी का अवमूल्यन इतना हो जाएगा
वैभव की फसलें उगाने वाला आदमी
अन्न के दानों से भी सस्ता हो जाएगा !

पन्द्रह अगस्त

आज आँखें नम हैं
गौरव-से ऊँचे हिमालय पर
घटाओं-सा बोझिल
अन्तर में उमड़ता-घुमड़ता ये ग़म है।
गर्व है मुझको विगत की उस वफ़ाई पर
जिसमें दूध की क़ीमत रक्त से चुकाई थी
स्नेह के बदले में फाँसी की रस्सी भी
चूम कर स्नेह-रुँधे गले से लगाई थी
किंतु ग़म है, आज अपनी बेवफ़ाई का
कि हम अपना पापी पेट पालने को
श्रम नहीं सींचते, अनाज नहीं उगाते
तिकड़में बोते हैं उलझने पनपाते हैं
अपने ऐश-आराम के लिए
देश की इज्जत भी
गिरवी धर आते हैं
तिरंगे के तीन रंगों को

स्वार्थ के श्यामल रंग से मैला हमने किया है
इसीलिए
स्वतंत्रता पाकर भी
अपने ही घर में
वन्दी का जीवन ही जिया है ।



वियतनाम : एक नई तस्वीर

वियतनाम क्या ?
एक जीवन की नई तस्वीर
ज़िन्दगी जिसमें सिर्फ़ जीना नहीं है
देश पर अन्याय को सहवाके
होंठ अपने स्वार्थ से सीना नहीं है !

ज़िन्दगी केवल धड़कता दिल नहीं है
ज़िन्दगी वह है कि जो हर श्वास में
सत्य का विश्वास बन कर चल रही है
बंध नहीं पाती जो
तन की एक सीमित रेख से
चेतना का स्वर बन-बन कर
धरा पर ढल रही है ।

मिट रहे हैं आज मानव तो यहाँ
किंतु मानवता बचाने के लिए
खोल कर मुंह जो खड़ी है दनुजता
उस दनुजता को मिटाने के लिए

मर चुके इतने, मगर, फिर भी वहाँ
ज़िन्दगी नव ग्राव लेकर फल रही है
क्योंकि वह मरना नहीं है
मौत का प्रतिकार है वह
इसलिए, मौत के काले तिमिर में
जिन्दगी की वर्तिका नव जल रही है !
ज़िन्दगी धोखा नहीं है, भय नहीं है
नहीं समझौता
जो किया करते यहां के सुख-तलाशी लोग
ज़िन्दगी विश्वास है, इक प्यास है, निर्भीकता है,
एक वफ़ाई है, औ' स्वाभिमान है,
इसलिए ही ज़िन्दगी को पुनः पाने,
नई परिभाषा बनाने
भुनजता रखने, मनुज वे मर रहे हैं
ज़िन्दगी को पर अमर वे कर रहे हैं ।
ज़िन्दगी कमज़ोरियों से हार कर
और खुद को ही कहीं पर मार कर
कुक्कुरों की ही तरह जीना नहीं है ।

●

बौना अस्तित्व

एक तो यह स्वार्थों की सिर पड़ाऊ भीड़
और फिर ये ज़िन्दगी के रास्ते
संकरे, कठिन, अवरुद्ध
भीड़ में, संघर्ष धक्कम-पेल के हिलकोर
और यह असमर्थ, बोना-सा कोई अस्तित्व
यों कुचलता जा रहा निःशब्द
ज्यों किसी पहिये-तले
अध खिला-सा फूल !



दो समस्याएँ : एक समाधान

पैसा और प्रेम
जब व्यक्ति-केन्द्रित हो जाते हैं
तो समस्याएँ बन जाते हैं
इसीलिये
पैसे को बाँट दो,
वह वरदान बन जायेगा
प्रेम को बाँट दो
वह भगवान बन जायेगा !



यह जिन्दगी है ?

यह जिन्दगी है
कि कोई सदाबहार का पौधा है
जिसमें हर रोज
दर्द का नया फूल खिल ही जाता है !

यह जिन्दगी है
कि कोई भटकी हुई यात्रा है
जिसमें हर रोज
भ्रमित करने वाला चौराहा मिल ही जाता है !

यह जिन्दगी है
कि कोइ गाँव के रास्ते पर टंगी, तेल-चुकी-लालटेन
जिसे बिना तेल डाले,
कोई जला ही जाता है !



अविश्वास

अविश्वास
स्पात की चट्टान-सा
जो हमें मिलने नहीं देता
शून्य की दीवार-सा
जो मनुज को मनुज से जुड़ने नहीं देता;
अविश्वास
सूक्ष्मदर्शक लेंस-सा
जिसमें से तुम्हारे अन्तर की एक-एक बुराई
मुझे कई गुना बड़ी होकर
साफ़-साफ़ दिखाई देती है
(जो मेरी आँखों का नेह-रस सोख लेती है)
अविश्वास
जो मुझसे तुमको तो विलगाता ही है
पर मुझको भी कितना अकेला कर जाता है !

★

दर्द, कविता और जिन्दगी

मैंने दर्द को दर्शन बना, न समझा न समझाया है
मैंने दर्द को भोगा ही नहीं जिया है
महंगे मोतियों को नहीं
अनाथ आंसुओं को जिन्दगी की माला में पिरोया है
मैंने कविता को केवल लिखा और गाया नहीं
ओढ़ा और बिछाया है
तन-मन के कण-कण को उसी में डुबाया है
जीवन की आग से उसको चमकाया है
और कविता से रोशनी ले जीवन सजाया है
तुम्हारा कहना सच है
कि कविता को जीना मृत्यु का ही साया है
पर मेरे लिए जिन्दगी और मौत में
फ़क़त इतना अन्तर है
एक ने जलाया है दूसरी ने बुझाया है;
इसीलिए कहती हूँ,
तुम मुझे जलने दो, जलने दो, जलने दो !

जीने का प्रमाण

पद-चिन्हों से अंकित पथ पर
चलने की अब चाह नहीं है
किन्तु चिन्ह से पूर्ण अछूती
शायद (मिलती) कोई राह नही है
क्षितिजों के घेरे पर लटका है
सपनों का इन्द्रधनुष तो
उसे पकड़ लेने को
मन का ये पंछी
निशदिन उड़ता है।
शायद यही चेतना मेरी
जीने का ये ही प्रमाण है
यों तो बिछी पटरियों पर जो दौड़ रही
वह तो जड़ता है
जिसको कहते रेलें, दौड़ते डिब्बे इंजन
मैं मानव हूँ
रेल भला कैसे बन जाऊँ ?

सम्वेदना की धूप

उम्र की उष्मा का सूरज ढलने लगा
शीतल पड़ने लगी सम्वेदना की यह धूप
जमने लगा हिल्लोलित भावना का सिंधु
और-हम उसमें खड़े
उस नीरनिधि के साथ स्वयं भी जमते गए
जड़ हो गए उच्छवास, गूंगे हो गए विश्वास
ऊँचा हो गया कुछ और ज्यादा
स्वप्न का आकाश;

जिन्दगी के और मेरे बीच-के वे फ़ासले
जो न नापे जा रहे थे
और चौड़े हो गए
पाँव ज्यों जमते गए
शक्तियाँ घटती गईं
यों यहाँ पर तृप्ति-तट की दूरियाँ बढ़ती गईं !

★

ना जाने कहाँ

दूर दूर तक फैला यह वियावान रेगिस्तान
खामोश पड़ा हो ज्यों बीमार ग्रसहाय-सा इन्सान
भटक रही इसमें
रेत के बबूलों-सी इन्सान की पहचान
पोखरे के जरा से जल की तरह कैद हो गया है कहीं
भोला ईमान !
चारों ओर प्यास, प्यास और यह प्यासा रेगिस्तान
सभी माँगते हैं, देता कोई नहीं !
फिर भी ना जाने कहाँ चले जा रहे हैं हम
इस ग्रसीम ग्रनजाने रेगिस्तान-से संसार में
केवल दो बूँद पानी की प्यास लिए
ग्रकाल-ग्रस्त मरुस्थल में भी
नख़्लिस्तान का वेबुनियाद विश्वास लिए
चलते ही जा रहे हैं हम
हर एक राहगीर दर्द की गठरी लादे आता है
हाथों में थमा जाता है
दो पल का साथ, पल भर का प्यार ·

मुक्त कारावास

बिना दीवार की खुली जेल-सा
यह खुला आकाश
यह धरती
यह वातास
जिसमें बन्दी हैं हम सूरज की तरह
अपना अस्तित्व और अपने होने की सार्थकता
प्रमाणित करने के लिए
छटपटाते रहते है, बन्दी विश्वास,
युग-युग से खुली धूप की तरह
सदैव पसरती है यह मन की प्यास
और हर साँझ को
एक-एक कण से टकरा कर प्यासी ही लौट आती है
खुले आकाश में बन्दी सूरज की तरह
चाहे, अनचाहे भी
रोज-रोज निकलना व जलना ही पड़ता है !

●

ना जाने कहाँ

दूर दूर तक फैला यह वियावान रेगिस्तान
खामोश पड़ा हो ज्यों वीमार असहाय-सा इन्सान
भटक रही इसमें
रेत के बबूलों-सी इन्सान की पहचान
पोखरे के जरा से जल की तरह कैद हो गया है कहीं
भोला ईमान !
चारों ओर प्यास, प्यास और यह प्यासा रेगिस्तान
सभी माँगते हैं, देता कोई नहीं !
फिर भी ना जाने कहाँ चले जा रहे हैं हम
इस असीम अनजाने रेगिस्तान-से संसार में
केवल दो बूँद पानी की प्यास लिए
अकाल-ग्रस्त मरुस्थल में भी
नख्लिस्तान का बेबुनियाद विश्वास लिए
चलते ही जा रहे हैं हम
हर एक राहगीर दर्द की गठरी लादे आता है
हाथों में थमा जाता है
दो पल का साथ, पल भर का प्यार

कभी न चुकने वाला अन्तहीन भार
अनजानी अनचाही परिस्थितियों की आँधियों के
मुँहजोर थपेड़ों से
अनजानी अनचाही राहों पर भी पग अपने आप मुड़जाते हैं
अजनवी अनजाने पथिकों के साथ
चाहे-अनचाहे हम खुद ही जुड़ जाते है
अन्तहीन यात्रा पर जिन्दगी का यह काफ़िला
ना जाने कबसे चला जा रहा है !
अनदेखी मंजिलें, पथ से अनजान
साथ वाले पथिकों की अधूरी-सी पहचान !
ना जाने हम कहाँ चले जा रहे है
सदियों से अनबुझी अपराजित प्यास लिए
अभावों की दुनियाँ में भावों का रास लिए
(दूरियों की दुनियाँ में मिलन का विश्वास लिए)
क्षणों के सागर जैसे इस संसार में
लकड़ी के लट्ठों की तरह
वृक्ष से टूट कर गिरे हुए पीले पत्तों की तरह
न जाने कहाँ बहे जा रहे हैं हम !
धागा छूटे हुए गैस के गुब्बारों की तरह
इस व्यापक आकाश में ना जाने कहाँ उड़े चले जा रहे हैं हम !

कब तक ?

क्या हम युगों तक साथ-साथ जी कर भी
अजनबी ही रहेंगे ?
ऊपर से पास, किंतु भीतर से दूर
घनी निकटताओं में भी मिलने से मजबूर
अन्तहीन उलझनों की ऊँची उठती दीवारें
हमें कब तक बाँटती रहेंगी ?
औचित्यहीन अपेक्षाओं की चौड़ी होती खाइयाँ
कब तक, निगलती रहेंगी
हमारे अपनत्व के अस्तित्व को ?
शिकायतों की नित नई जनमती जोंकों की-भीड़
कब तक चूसती रहेगी
हमारे अन्तर का नेह-रस ?
और हम
हमारी नन्ही-नन्ही अबोध बालकों-सी इच्छाएँ
घने अपनत्व के अनबोले भोले विश्वास
हमारे तुतलाते सपने
हमारी नववधू-सी प्यास

कब तक दम तोड़ती रहेगी
इन विडम्बनाओं की बलिवेदी पर
जिसको, जाने-अनजाने हमने खुद ही रच डाला है
किन्हीं शापित अभागे क्षणों में !

× × ×

डायरी के पन्नों की तरह
फड़-फड़ा कर खुल जाता है
कभी-कभी अतीत
किंतु,
भविष्य के रीते पृष्ठों पर
कल्पना की लेखनी अब क्यों नहीं चल पाती ?
यह कौन है
जो हमारे भविष्य को जन्मने से पूर्व ही
सांप-सा डस लेता है ?



तुम्हारा प्यार : दो चित्र

१

शीत की सुन्दर सुहानी धूप-सा
गुनगुना उजला तुम्हारा प्यार
और वर्षा की फुहारों से सजल हो
बिछ गई जो
महकती उपकार-बोझिल मूक मिट्टी-सी
यह तुम्हारे सामने
मेरे अहम् की हार !

२

चाँदनी-स्नात हिमगिरि-सा
निष्कलुष, उज्ज्वल, अचल दृढ़ मूक तेरा प्यार
चरणों में जिसके गरजता औ' उफनता
मूक प्यासों का अमित असहाय पारावार
मचलती लहरें, उमड़ता भावना का ज्वार
तोड़ देता दम, तुम्हीं से चोट खाकर
बिखर जाता बुद्‌बुदों-सा स्वप्न का संसार !

कुछ छोटी कविताएँ

१

शरद-संध्या
मुँह छिपाती (तीव्रगामी) धूप
ज्यों किसी प्रौढ़ा का ढलता रूप ।

२

जेठ की दुर्लभ सिमटती
नव वधू-सी छाँव;
या शहर से लौटे प्रवासी को
बहुत पथ भटकने के बाद
मिला हो अपना पुराना गाँव ।

३

जेठ की यह तम-तमाती धूप
ज्यों किसी मुग्धा का क्वारा रूप ।

४

पुराने ओछे वस्त्र-सा सामर्थ्य
इस ओर ढाँको तो उस ओर फट जाता है.

झाँकने लगती है फिर वही नग्नता-सी दुर्बलता ।

५

चेहरे, चेहरे, चेहरे
ध्वनियाँ, ध्वनियाँ, ध्वनियाँ
गतियाँ, गतियाँ, गतियाँ
क्या, यही है दुनियाँ ?

६

किसी हठीले बालक-सी ये इच्छाएँ !
जितना मनाओ, उतना मचल-मचल जाती है !

७

जो चूक गए
वे ही पल अपने थे,
जो मिल न सके
वे ही तो सपने थे !

८

तुम कहते हो, प्रेम करने में मजा है
पर प्रेम, एक पल सुख के लिए
उम्र कैद की सजा है !

धोखा, धाँधली व घपला इसमें नहीं चलता
बिना दर्द-तेल के ये दिया नहीं जलता
प्रेम के बाजार में
लाख कोशिश के बावजूद भी
खोटा सिक्का नहीं चलता ।

९

आश
पर्वतों से फूटती जलधार-सी
दबकर भी, मुड़कर भी
बार-बार टूट-टूट, बार-बार जुड़कर भी
राह जो निकालती ।

१०

चाह
भादों की उमड़ती घटाओं-सी
बहकी हवाओं-सी
प्यासे की प्यास-सी
किसी क्रांतिकारी के अविचल विश्वास-सी ।

११

साँझ के इस सूर्य-सा यह थका-हारा

व्यथा-बोझिल मन
खींचकर नैराश्य की श्यामल चदरिया
किसी अज्ञात दिशि में डूब जाना चाहता है।

१२

सर्दी की यह धूप सुबह की
बड़ी सुहानी लगती है
जैसे मेरी माता ने दुलराया हो
और फुहारें सावन की पहली-पहली
लगती है
ज्यों मीत प्रतीक्षित आया हो !

१३

कुछ क्षणों को मैंने
बस ऐसे जिया है
ज्यों, अपने खुले घावों को खुद ही सिया है !

१४

मैंने कविता को रचा ही नहीं, जिया है,
इसीलिए, रस से अधिक
जीवन का विष ही मैंने पिया है !

★

जहाँ ज़िन्दगी .क़ैद है

बिना दीवारों औ' दरवाजों की एक खुली जेल
जन्म से मौत तक
न कभी खुलती है न कभी बन्द होती है
पर रहती जरूर है, टूटती कभी नहीं
फिर भी जिन्दगी है कि सिसकती तो है,
पर छूटती कभी नही !

नदी की धारा से लेकर सागर की विराटता से
उठती हुई लहरों की विशाल बाहे
हमको बुलाती हैं
पर, एक छोटा-सा पोखरा निकलने नही देता
उसी हरी काई भरे कीचड़ वाले पोखरे में
कभी-कभी खिलने वाले खुशियों के चन्द कमल
चाँदनी बरसने पर मुस्काने वाली कुमुदिनी-सी नन्ही-नन्ही
तमन्नाएँ
पूर्णिमा को झाँक जाता सुहाने सपने-सा चाँद का प्रतिबिम्ब,
बाँध-बाँध लेता है
जब-जब भी निकलने की कोशिश की जाती है
पाँव रपट जाते हैं, कीचड़ में बार-बार ।
नहीं हो पाता गरजती उत्ताल तरंगों-से खतरों का सामना

श्रौर ना उपलब्धियों के खरे मोती मिल पाते हैं !

धरती से मीलों तक खुला हुश्रा नीलाम्बर
विविध रंग-रूप धार श्रामंत्रित करता है
(मुझको भी देखो तुम, मुझ जैसे व्यापो तुम)
पर, २×४ वाली लोह की तिजोरी में
जिसमें भरा रहता है घुप श्रंधकार
श्रादमी ठुंस जाता है, नोटों के साथ-साथ;
सोने के साथ-साथ श्रादमी भी धातु का ढेला बन जाता है
बीस से साठ, यानी चालीस वर्ष
उसी को भरने में रीते हो जाते हैं
कभी जो जिंदा थे, बीते हो जाते हैं !

एक भूख, प्यार श्रौर पैसे की भूख से भी श्रौर बड़ी होती है
· बड़ी कड़ी होती है
पेट की थैली की
उसी को भरने में उम्र रीत जाती है
कभी 'कुछ' करने की, कभी 'कुछ' बनने की
चिनगारी जगी भी हो
बेशर्म जरूरतों को राख तले दबकर स्वयं बुझ जाती है
रोटी व कपड़े की कीमत चुकाने में
हीरे-सी कीमती कोई चीज, खुद ही चुक जाती है ।

ये ठेले, ये तांगे, मानव से खींचे जाने वाले ये रिक्शे

अधरात तक फटी-फटी पलकों-सी पथ-जोती
चाय की, पान की ये छोटी दूकानें
पटरियों पर बिछी हुई मनुज की बिसात-सी
फुटपाथी दूकाने
सदा-सदा सजती हैं, सदा बिखर जाती हैं
दस-बीस सिक्कों व दो-चार नोटों में कैसे कैद हो जाते
मानव के सतरंगी सपनों के ये विशाल इन्द्र धनुष ?

दर्शन तो कहता है कि आत्मा परमात्मा है
हम सब स्वाधीन हैं, कर्म अपना करने को
पास के मैदान से भाषण देते नेताजी
माइक पर चीखते पूरे विश्वास से
अब हम स्वतन्त्र हैं, कट चुकी अपनी गुलामी की बेड़ियां।

रात के बारह बजे पास से गुजरता हुआ एक बूढ़ा
ठेला घिसटते हुए एक सड़े फलों का
लालटेन की रोशनी में, फैलाकर कुछ पैसे हथेली पर
गिनता है
सिर ठोंक लेता है,
कौन जाने कल की सुबह क्या होगी ?

★

एक प्यास जिन्दगी

कितने बेतरतीब और बदनुमा हैं ये क्षण
जो जोड़े नहीं जुड़ते
तोड़े नहीं टूटते
बस बिखरते जाते हैं, छितराते जाते हैं
मेरी इन श्वासों पर परतों-से चढ़े जाते है
धुआँ, कुछ लकीरें, कुछ आकृतियाँ
उभरती है फिर डूब जाती हैं
आँख के सूखे जलाशय में
अन्तर की धरती से फिर एक काला सूरज
बम के गोले-सा निकलता है
जो क्षण गुजरते रक्तिम बन आग-सी उगलता है
कुछ परतें चटकती हैं, फटती हैं
फिर धुआँ, फिर शोले, फिर विस्फोट, फिर चीखें
कम्पन, सिहरन, खामोशी
असीम गहरा अन्धकार मुँह फाड़े बढ़ा चला आता है
फिर कुछ सिमिटता है, फिर कुछ समा जाता है

डूब जाता है मेरा अस्तित्व किसी काले समुन्दर में;
सांसों की जगह नाक में
गन्धभरा उबलता पानी भर जाता है
घुटन, तड़पन
जिन्दगी और मौत का कंपा देने वाला द्वन्द्व
गले तक भरा पानी चीखने भी नहीं देता
आँखों में एक बार नीला आकाश सतरंगा इन्द्रधनुष
फिर कौंध जाता है
हरी-भरी गूँजती अमराइयाँ, सुनहली बालियाँ
बजा-बजा तालियाँ मुझको बुलाती हैं
फिर एक बार हाथ उठते हैं
छटपटाते हैं, सहारा खोजते हैं
लहरों को पकड़ लेते हैं
पर वे लहरें बेवफ़ा दोस्त-सी
कसी हुई मुट्ठियों में से धीरे से खिसक जाती हैं
मुट्ठियाँ फिर रीती हो जाती हैं
मेरे अस्तित्व को लीलने लगता है
कोई अनजाना बेजुबां दर्द
कोई प्राण लेवा ज्वार !

आदमी से आदमी तक

यह सच है कि तुम्हारा व मेरा खून का रिश्ता नहीं है
यह सच है कि आदमी से आदमी को जोड़ने वाला
स्वार्थ भी हमारे बीच बसता नहीं है
यह भी सच है
कि हमारे रास्ते कुछ अलग दिशा जाते हैं
परन्तु, सच्चे रिश्ते न खून के होते हैं ना पानी के
ना बचपन, बुढ़ापे के होते हैं ना जवानी के
इसीलिए
मेरा और तुम्हारा रिश्ता
केवल आंख के गंगाजल की धार से जुड़ा
दो कगारों का रिश्ता है
वह धार, उम्र से नहीं, अन्तर के किन्हीं गहरे स्रोतों से—
फूटती है
जो मिलन-विरह के मीटरों से नही नापी जाती
जो केवल विश्वास के असीम धरातल पर बहती है
जो केवल हमें ही नहीं
हमारे साथ जोड़ती है
कितने अजाने उपेक्षित मरुस्थलों को
अन्तर की भूमि को ऐसा उर्वर कर जाती है
कि जिसमें तुम्हारा व मेरा स्नेह ही नहीं

हर एक अनजानी अकेली आँख का मोती
असंख्य दाने बन फलता है
उस कोमल धरातल पर
एक-एक क्षण आँक जाता है अपनी तस्वीरें
और जिसका एक-एक कण आईने में बदल जाता है
उन्ही आईनों में दिखाई देने लगते हैं
अन्तर के अंधेरे में छिपे
अनेक चेहरे, अनेक विद्रूप आकृतियाँ, निर्दोष भूखें
अपराधिनी प्यासें
तब मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ
कि स्वयं को नंगा देखना कितना मुश्किल होता है
(कितना अजीब)
पर, यह अपने ही अंतर का आईनों में बदल जाना
इसी आईने जैसे रिश्ते का ही परिणाम है
जो रिश्ता नहीं, रास्ता भी है
दिल को दिल तक
आदमी को आदमी तक ले जाने का
अकेले को दुनिया से परिचित कराने का
व्यष्टि को समष्टि के साथ जोड़ जाने का !

★

क्रांति

क्रांति
अब कागजों के चोखटों में
अक्षर बन सिमट गई है,
अक्षरों के समूह के समूह
हर सुबह शहीद होने निकल पड़ते हैं
पर, मरता कोई नहीं
क्योंकि "अक्षर ब्रह्म" है
(ब्रह्म को कब कोई मार सका है)
एक कागज (समाचार पत्र) से एक समूह
दूसरे से, दूसरा समूह
हर रोज निकलते हैं, टकराते हैं,
एक दूसरे के प्रति विरोध उछालते हैं,
और फिर
अगणित आँखों की अकुलाहट बन
अनेक होठों पर फुसफुसाहट बन
अस्तित्व हीन हो जाते हैं।

इस क्रांति में
अब लाल रक्त नहीं बहता,
काला भी सूखा हुआ, जमा हुआ रहता है ।
मनुष्य अब केवल शब्द बन गया है
अक्षरों में बिखर गया है
अक्षर-'ब्रह्म' जैसा ही बहरा, गूँगा तटस्थ
और संवेदना से शून्य ।



आदमी का जन्म

अब केवल आदमी ही नहीं
आदमी के साथ
जनमने लगी है एक नई उलझन
अपनेपन का यह विस्तार,
लीलने लगा है 'अपनापन'
अपनों की ऐसी भीड़ में घिर कर
किसी के भी अपने अब नहीं रहे हम,
स्नेह के सपने, वात्सल्य के वरदान,
बनने लगे हैं समस्याएँ
एक माँ का बच्चा
रोटी छीनता है, दूसरी माँ के बच्चे की
अब मैं कैसे मान लूँ
कि बच्चों की यह न संभलने वाली भीड़
मातृत्व का विकास है !
मानवी आकृतियों की यह बढ़ती हुई भीड़
अब उमड़ती बाढ़ में बदल रही है

ग्रौर उसमें डूबने लगी है
हर इन्सान की पहचान
जिन्दगी की ग्रजीबोग़रीब उलझनों को
पहचानते-पहचानते
ग्रादमी को ग्रादमी लगने लगा ग्रनजान
ग्रब मैं कैसे मान लूं
कि ग्रादमी का जन्म एक ग्राशिष है ।



खोई हुई पहचान

बिना नाम की तख़्ती के मकान-सा
भीड़ भरी बस्ती में
मेरा यह अस्तित्व
स्वीकारा भी नहीं जा सकता
नकारा भी नहीं जा सकता,
ग़लत पता लिखे लिफ़ाफ़े-सी
यह गुमनाम ज़िन्दगी
ना जाने कितने दर भटकी है
पर अपनी मंज़िल से सदा दूर, सदा दूर
दूर कहीं अटकी है !
ग़लत हस्ताक्षर किए चैक की तरह
मेरे वे सपने
'अर्थ-हीन' रह गए हैं बार-बार,
बिना पद की मोहर लगे हस्ताक्षर-सी
यह महत्त्व हीन ज़िन्दगी
किसी के भी काम नहीं आई है ।

मेरी तस्वीर कही खो गई है !
खो गया है मेरा पहचान-पत्र
फिर, में तुम्हें कैसे समझाऊँ
कि मैं "मैं" ही हूँ
कैसे बताऊँ
कि जिसे तुम भूत कह चुके हो
वही वर्तमान हूँ "मैं"
परन्तु
अपनी ही खोई हुई
पहचान हूँ मैं !



स्वर्ग भी जेल

दस इन्टू बारह के कमरे के बाहर भी
शायद कोई दुनिया है
वह दुनिया, चाहे आज अपनी अनजानी हो
कभी तो अपनी पहचानी हो सकती है !
वर्ना, पुराने कमरे के
सीलन भरे अंधेरे चोखटे के भीतर भी
ना जाने कितने कनखजूरे रहते हैं,
कितने है मच्छर और कितने हैं खटमल भी
जो सदा छुप-छुप कर मेरे इस तन का ही खून पिया
करते हैं,
साथ-साथ पास-पास रहने से
इन्हें क्या हम अपना मीत कह सकते है ?
अपनेपन का स्वर्ग भी बहुत सिकुड़ जाने पर
जेल बन जाता है !
इस कमरे के बाहर यदि ठंडी हवा के झंकोरे हैं
तो नर्म-गर्म नेह जैसी धूप भी तो है
काँटे है, कंकड़ हैं, उलझाती झाड़ियाँ हैं
तो कहीं-कही तन-मन को महकाते फूल भी तो हैं
अपनी परछाई को निगल जाने वाले अजगर-से रेगिस्तान हैं

तो पलक-पाँवड़ों-से कोमल हरियाली के टुकड़े भी तो हैं
बदबू है, धुआँ है, कहीं गन्दगी भी है
किंतु मुक्त साँस लेने को खुली हवा वाला नीला आसमान-
भी तो है
रास्ते भटकने का खतरा ज़रूर है
पर, बिना भटके नया रास्ता किसको मिल पाता है !
मंजिल तो दूर की ही चीज़ हुआ करती है
पास आ जाने पर मंज़िल नहीं रहती
वह भी बस रास्ते का एक टुकड़ा बन जाती है
पर यह भी कैसा सच
साथ निभाने को तो रास्ते ही निभाते है !
फिर भी ना जाने क्यों
बालक-सा हठीला मन, समझ नहीं पाता है
या सभी समझ कर भी (जो उसे आसान नहीं)
समझना नहीं चाहता है
कभी-कभी पीड़ा भी आदत बन जाती है
छोटी-सी बात भी वितान-सी तन जाती है
नन्हीं-सी प्यास भी सारी ज़िन्दगी पी जाती है,
कभी-कभी दवाई भी जहर बन जाती है,
और उपचार भी प्राण ले जाता है ।

*

आँसू

ग्रांसू जो बहता है
ग्रपने ही दुखड़े पर
वह सच्चा ग्रांसू नहीं, बस खारा पानी है
ग्रांसू जो टपका है
ग्रपनों के दुखड़ों पर
वह ग्रांसू पानी से मोती वन जाता है
किन्तु, जो जन-मन की पीड़ा से उमड़ा है
करुणा की वदली वन ग्रांखों में घुमड़ा है
वह ग्रांसू
ग्रमृत की वूंदें वन ढलता है
धरती के प्रांगण में
मानवता के मन में
ग्रमृत की वेली वन शाश्वत् हो फलता है !

★

जिन्दगी का जोड़

'दुनिया' तीन अक्षरों का यह शब्द
जल, थल, आकाश तीनों को ही समेट लेता है
पर्वतों से ऊपर तक
सागर के उस पार
धरती से आसमान तक, दुनिया, दुनिया, दुनिया !
अगणित चेहरे, अथाह भीड़
असंख्य आहों और आँसुओं की पीड़
परन्तु, मेरी और तुम्हारी दुनिया
इसकी और उसकी दुनिया
हर एक आदमी की दुनिया
सभी की अपने-अपने ढंग की, अपने-अपने रंग की
एक-सी होते हुए भी अलग-अलग होती है
पाँच-सात घर में रहने वाले लोग
माँ-बाप या भाई-बहन
दो-चार छोटे-बड़े बच्चों का चिड़ियाघर
पति के लिए पत्नी

पत्नी के लिए पति
थोड़े-से बासन बिस्तर, थोड़ी सी सम्पत्ति
दो-चार पड़ौसी
दस-बीस वे लोग, जहाँ नौकरी करते हैं
या कामधन्धा चलता है, जिसके साथ जिनके बीच,
दस, बीस रिश्तेदार
एक-दो दोस्त
जोड़ करने पर, कुल सौ-दो सौ लोग
दस इन्टू बारह के दो-तीन कमरे
दो-चार अखबार
दस-बीस किताबें
पुरानी साइकिल या सैकण्डहैन्ड स्कूटर बेकार
लिखने को लेखन है, घर का हिसाब
या महीने में काम-काजी पत्र दो-चार !
पढ़ने को फाइलें, धंधे का हिसाब
कभी मन ऊबे तो किराये के उपन्यास या कहानियाँ
दो चार !
तनख्वाह, प्रमोशन,
बढ़ती महंगाई के भावों का हिसाब

घासलेट, डालडा, राशन की दूकान
हर रोज वे ही चार-पाँच सड़कें, दो-चार चौराहे,
दो चार मोड़
जीवन की यात्रा का बस इतना जोड़ !
इतनी-सी दुनिया कुल
इतना-सा नाप
चार जने कहदें, बस वही पुण्य-पाप !
एक दोस्त प्यार करे, दुनिया बस जाय
और वही दगा करे, दुनिया लुट जाए ।
चार जने वाह कहें, दुनिया बन जाय
चार जने गाली दें, दुनिया बिगड़ जाय !
कैसी है दुनिया यह, कैसा है खेल
आदमी क्या है अब ?
पिंजरे का तोता या कोल्हू का बैल !



कर्म-रूठा शब्द

आज का यह युग
कि जिसमें कर्म से रूठा हुआ हर शब्द
व्यवहार से बिछुड़े हुए सिद्धान्त
बस हवा में गूंज भरते हैं;

अश्रु का बढ़ता हुआ अवमूल्यन
हो भले मैली, मगर मुस्कान की यह माँग
सारे नयन करते हैं!

हृदय से बिछुड़ा हुआ हर हृदय
हाथ से मिलता हुआ हर हाथ
मानों, मंच पर एक दृश्य-सा
बस पेश करते हैं!



रिश्ते, रास्ते, कुर्सी के हत्थों में

रिश्ते नहीं, रिश्तों के मुखौटों का घेरा
यादें नहीं, यादों के प्रेतों का डेरा
और जिन्दा-जागता यह स्नेह का नन्हा-सा शिशु
दफ़ना दिया जाता है
हर रोज किसी सड़क-चौराहे पर
जिससे, इस बिकी हुई बाज़ारू ज़िन्दगी का रास्ता
साफ़ हो सके !
गलती से शेष बचे आदमी के अंतस से
कभी-कभी फिर फूट पड़ते हैं, स्नेह के अंकुर
करुणा के किसलय; क्षमा, दया और ममता की
कुछ नन्ही कलियाँ
तब लगता है, इन्ही समझौतेवादी, सुविधाभोगी कौवों को
शायद कोई बम फटने वाला है
और फूल बनने से पहले ही, बेरहमी से तोड़कर कुचलकर
फेंक दिया जाता है मिट्टी में,
हर नवजात सपने के सूरज को

लावारिस वादलों के हवाले कर दिया जाता है !
किसी को फूटी आँखों नहीं सुहाता
सरलता का झाँकना (उसके ज़िन्दा रहने का अहसास)
बेहद दर्द देती है यह बात
कि अमानवता की काल कोठरी में क़ैद होने पर भी
आदमी अभी तक, किसी कौने में जिन्दा है !

सब ओर दिन को ही नही, रात को भी
मंडराते रहते हैं भूखे वदरूप वदनीयत
कौओं और गीधों के हुजूम
मरे हुए आदमी का मांस नोचने के लिए
लाशों के ढेर पर जश्न मनाने के लिए
ऐसे में कितना वड़ा अपराध वन जाती है
यह छोटी-सी भूल
आदमी को कहीं छिपा कर ज़िन्दा रखने की वात;
हवाएँ हँसती हैं ऐसी नादानी पर
कहती है, यह वचकाना हरकत है, नासमझी है !

रास्ते जैसे अव खत्म हो चुके हैं
ज़िन्दगी का हर क़दम अव सीधा चौराहे पर ही पड़ता है

मंजिल नहीं दिखती
जहाँ से भटकाव का सिलसिला शुरू होता है
लगता है, अब केवल रास्ते ही रास्ते हैं
पर, यह नहीं मालूम
कि आदमी उनके लिए हैं
या वे आदमी के वास्ते हैं !
कोई भी हमशक्ल अब रास्ता दिखाने नहीं आता
शायद सभी को क़ैद कर दिया गया है
जरूरतों या खुदगर्जी की कुर्सी के हत्थों में !



नई पीढ़ी के विकास के लिये क्या नहीं किया जाता
दिखाई जाती हैं ब्लॉ होट ब्लॉ कोल्ड फिल्में
(उसके गर्म खून को ठंडा करने के लिये)
सुनवाई जाती हैं, मीठी लोरियों की तरह क्रिकेट की कमेंट्रियाँ
जिससे वह दिन में भी सो जाय (सही रास्तों से बेखबर होजाय)
बेकारी, भूख व आक्रोश की आग को भूल कर
सपनों की भूल-भूलैया में खो जाय ।
जवानी की ताकत से भ्रष्टाचार का जाल काटने की जगह
वह केवल समय को काटती चली जाय !

पहले हर आदमी खुदा का बन्दा होता था
अब हर छोटी-मोटी कुर्सी पर बैठा हुआ आदमी
किसी न किसी मंत्री या उच्चाधिकारी का आदमी होने लगा है !

पहले आदमी कुर्सी पर बैठता था
अब कुर्सी आदमी को दबा देती है;

नेता अब फांसी के तख्ते पर नहीं
कुर्सी की गोदी में शहीद होना चाहते हैं !

तुम व्यर्थ कहते हो कि मेरे देश में समाजवाद नहीं आया
चपरासी से अफसर तक अफसर से मंत्री तक
छुप कर आती लक्ष्मी के सभी साझेदार हैं
बांट कर खाते हैं ना, यही समाजवाद है !

पहले अंधेरे में ही रास्ता भटकने का खतरा रहा करता था
अब तो 'सूरज' की रोशनी भी सरे आम छल रही है
आग अब अंगीठियों में ही नहीं
कहीं पेट में तो कहीं सीने में जल रही है !

सीधे और सही रास्ते जैसे अब खत्म हो चुके हैं
और वे सभी बदल गये हैं दोराहों-चौराहों में
मंजिल कहीं से भी नहीं दिखती
जहाँ से भटकाव का क्रम शुरू होता है
लगता है, अब केवल रास्ते ही रास्ते हैं
पर, यह नहीं मालूम
कि आदमी उनके लिए है
या वे आदमी के वास्ते हैं !
कोई भी हमशक्ल अब रास्ता दिखाने नहीं आता
शायद सभी को क़ैद कर दिया गया है
बेशर्म जरूरतों या बेहया खुदगर्जी की कुर्सी के हत्थों में !



डॉ० सावित्री डागा

कृतियाँ–अमिटलिखावी (कविता, १९५९) भूमिका-महाकवि सुमित्रानंदन पंत।
मुक्तावली (मुक्तक-संग्रह, १९६०) सीपी-मुक्ता (कविता) सन्दर्भों से कटे हुए (कविता), राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत, १९७७।
एक प्यास ज़िंदगी, इसी से अंधेरा है (कविता, १९७८' अनुभूति से सहानुभूति तक (१९७७, सम्पादित)
आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य में नारी (शोध प्रबंध १९७७)
शीघ्र प्रकाश्य–कविता की मात पर (कहानियाँ)
होने न होने के बीच (कविता), अस्मिता की तलाश।
रचनाएँ प्रकाशित–ज्ञानोदय, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सरिता, मुक्ता, गवाह, लय, जनयुग, रसवंती, उत्कर्ष, जागृत महिला, संचितना, सम्प्रेषण, सम्बोधन, मधुमती आदि मे प्रकाशित रचनाओ से चर्चित प्रशंसित कई प्रमुख संग्रहो मे रचनाएँ संगृहीत।
आकाशवाणी–१९६१ से निरंतर प्रसारित।
संस्थाएँ–संस्थापिका एव अध्यक्षा-'सम्भावना -' महिलाओं की साहित्यिक संस्था।
अध्यक्ष-प्रगतिशील लेखक संघ, जोधपुर। सदस्या ... सभा, राजस्थान साहित्य अकादमी। संयोजिका ... विभाग, राज० सा० अ० उदयपुर। सदस्या - ... लेखक संघ, भारतीय लेखिका परिषद् आदि।
जन्म, शिक्षा–बीकानेर (राज०)। एम. ए., पी-एच. डी.
विवाह–अन्तर्जातीय, डॉ. एम. एल. डागा के साथ।
सन्दर्भ ग्रन्थ–भारतीय लेखक कोश, Reference ... Reference Asia, Directory of ... Wowen To-day, Famous India Nation' Who's Who आदि।
सम्पर्क–प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, जोधपुर ...